'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'

(ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजकी अमृत-वाणी)

वेद विश्वका प्राचीनतम वाङ्मय है। भारतकी सनातन मान्यताओंके अनुसार वेद अपौरुषेय अथवा सर्वज्ञ स्वयं भगवान्की लोकहिताय रचना है। शास्त्रोंमें सम्पूर्ण वेदका धर्मके मूलरूपमें आख्यान किया गया है— **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'**। उदयनाचार्यने सम्पूर्ण वेदको परमेश्वरका निरूपक माना है। उनका कहना है—

कृत्स्न एव हि वेदोऽयं परमेश्वरगोचरः।

भट्टपादने वेदकी वेदता इस बातमें माना है कि लोकहितका जो उपाय प्रत्यक्ष अथवा अनुमानसे नहीं जाना जा सकता, उसका ज्ञान वेदसे होता है—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

वेदकी समस्त शिक्षाएँ सार्वभौम हैं। वेदभगवान् मानवमात्रको हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि कुछ भी बननेके लिये नहीं कहते। वेदभगवान्की स्पष्ट आज्ञा है— **'मनुर्भव'** अर्थात् मनुष्य बनो। आज हमारी मनुष्यता पाश्चात्त्य धूमिल संस्कृतिके संसर्गसे संक्रमित हो गयी है। अहर्निश यह तथाकथित मानव-समाज स्वसाधनमें संलग्न है। सैकड़ों वैदिक मन्त्रोंमें भगवान् नारायणका विराट् और परम पुरुषके रूपमें चित्रण किया गया है—

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

(ऋक्० १०। ९०। १)

इस विश्वके असंख्य प्राणियोंके असंख्य सिर, आँख और पैर उस विराट् पुरुषके ही सिर, आँख तथा पैर हैं। विश्वमें सर्वत्र परिपूर्ण और सभी शरीरोंमें प्राणिमात्रके हृदयदेशमें विराजमान वे पुरुष निखिल ब्रह्माण्डको सब ओरसे घेरकर दृश्य-प्रपञ्चसे बाहर भी सर्वत्र व्याप्त हैं।

अतः सर्वभूतमय ईश्वरकी अवधारणा प्रगाढ करनेके लिये ही वेदोंमें प्रार्थना की गयी है— **'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।'** सभी दिशाएँ मेरे मित्र हो जायँ। **'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'** हम सभी प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखें—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

(अथर्ववेद ३। ३०। १)

ईश्वरने हमें सहृदय, एक मनवाला बिना द्वेषके बनाया है। हम एक-दूसरेसे ऐसे स्नेह करें, जैसे गाय अपने नवजात बछड़ेसे करती है—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

(ऋक्० १०। १९१। ४)

हम सबके जीवनका लक्ष्य एक हो, हृदय और मन एक हों, ताकि मिलकर जीवनमें उस एक लक्ष्यको प्राप्त कर सकें।

मानवधर्मका ऐसा उच्चतम, श्रेष्ठतम और वरणीय-ग्रहणीय स्वरूप अन्यत्र दुर्लभ है। वैदिक धर्म हमें सुख-शान्ति, समाजमें समृद्धि, सेवा-भावना, सामञ्जस्य, सहयोग, सत्याचरण, सदाचरण, संवेदनासे परिपूर्ण हृदय और मननशील मनुष्य बननेकी ओर उत्प्रेरित करता है।

वेदमें इसी भावनाको दृढ़ किया गया है कि एक ही आत्मतत्त्व प्रत्येक पदार्थमें प्रतिबिम्बित होकर भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे अभिहित हो रहा है, अतएव समग्र ब्रह्माण्ड एक ही तत्त्वसे अधिष्ठित है। वेद-संस्कृतिको वैष्णव संस्कृति इसलिये कहा गया है कि विष्णुमें ब्रह्मके सभी गुणोंका समावेश हो गया है—

'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।'

(ऋक्० १०। ९०। २)

वेद-विद्या भारतीय संस्कृतिका पहला प्रतीक है। वेद-विद्या त्रयीविद्या कहलाती है। ऋक्, यजुः और साम ही त्रयीविद्या हैं। त्रयीविद्याका सम्बन्ध अग्नित्रयसे है।अग्नि, वायु और आदित्य— ये तीन तत्त्व ही विश्वमें व्याप्त हैं। पुरुष ब्रह्मके तीन पैर ऊपर हैं और एक पैर विश्व है। त्रयीविद्याके समान ज्ञान, कर्म और उपासनाका त्रिक वेद-विद्याका दूसरा स्वरूप है, जिसके माध्यमसे वेद ब्रह्मकी सत्, चित् और आनन्द— इन तीन विभूतियोंकी अभिव्यक्ति हो रही है। विश्वके सम्पूर्ण धर्मोंका केन्द्रबिन्दु इस त्रिकमें ही स्थित है। यह त्रिक है और अधिक विशिष्ट रूपमें— गायत्री, गङ्गा एवं गौके रूपमें प्रस्फुटित हुआ है। अतः गायत्री, गङ्गा और गौके तत्त्वको ठीक-ठीक समझना ही वैदिक संस्कृतिके मूल तत्त्वोंको समझना है।

आत्मकल्याणके इच्छुक मानवोंको धर्मके मूल स्रोत वेदोंका अध्ययन, मनन और यथार्थ चिन्तन आत्मनिष्ठाके साथ करना चाहिये।

[प्रस्तुति— श्रीमदनजी शर्मा शास्त्री, साहित्यालंकार]